मूर्ति का भगवान, जिन्दा इन्सान का भगवान

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मूर्तिकार पत्थर के टुकड़े को गढ़कर भगवान का रूप बना देता है। जब उसमें प्राण प्रतिष्ठा की जाती है तो मंदिर में स्थापित होकर वही पत्थर का टुकड़ा ईश्वर के रूप में पूजनीय हो जाता है। पत्थर के रूप में रहने पर वह दर–दर की ठोकर खाता है किन्तु जब कलाकार के हाथ में पड़कर वह स्वरूप धारण करता है तो वही भगवान बन जाता है। मनुष्य या कोई प्राणी चौरासी लाख जीव योनियों में सभी एकसमान है। मानव अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करता है। मानव की पहचान उसके कार्यों से होती है। गुणों की पूजा सर्वत्र होती है। व्यक्ति यदि गुणवान होता है तो वह पूजनीय बन जाता है। सम्यक् दृष्टि होने पर मानव को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, अविनाशी है, आत्मा शास्वत् तत्त्व है। जड़ परिवर्तनशील है। आत्मा के संयोग से जड़ भी चेतन प्रतीत होता है। शरीर गलन मिलन धर्मा है। शरीर विनाशी और आत्मा अविनाशी है। आत्मा में ज्ञानदर्शन है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य चलता रहता है। जड़ तत्व सुख–दुःख की अनुभूति नहीं करता। अनुभूति केवल चेतन तत्व में होती है।

अध्यात्म का अर्थ है आत्मा में रहना, जीव और जगत् के भेद को जानना और मानना। संसार को ही सबकुछ मानकर न रहना। पारलौकिकता के बारे में चिंतन करना। इस संसार में मानव लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में चिंतन करता है। लौकिक से तात्पर्य इस लोक से है जिसमें हम रहते है। सभी प्राणी इस लोक में ही अपनी जीवन लीला करते है। एक इन्द्रिय से लेक पंचेन्द्रिय प्राणी तक सभी जीव है। चेतना का स्तर सब में भिन्न–भिन्न है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में सोचता है। धर्म कर्म करता है। अन्य प्राणी केवल इन्द्रिय के वशीभूत होकर के ही कार्य करते है।

मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धितत्व है और वह विवेक से कार्य करता है। बुद्धि ही मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न करती है। आत्मा तो सब में है। सभी आत्माएं समान है।

मानव ही आत्मचिंतन करता है। वेदों से लेकर के अधुनातन साहित्य तक के सभी ग्रंथ आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत के बारे में चिंतन करते है। आत्मा का विवेचन दर्शन शास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। जितने भी दर्शन है सभी ने आत्मा के बारे में चिंतन किया है और सत्य का साक्षात्कार करने का प्रयास किया है। आत्मा के स्वरूप के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। योगी लोग आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते है। भोगी लोग इस संसार को ही सबकुछ मानकर उसी में भ्रमण करते है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के बाद किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। सब प्रकार के दोषों से रहित होने पर सम्यक् ज्ञान, ब्रह्मचर्य और सत्य के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है।

सम्यक् ज्ञान ही एक ऐसा आचार है जिसके द्वारा निखिल कर्मों का विलय किया जा सकता है। इस ज्ञान की उपलब्धि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये सत्यानुष्ठान की महती आवश्यकता होती है। सत्य का अनुष्ठान और तपस्या के द्वारा ही सम्यक्ज्ञान की उपलब्धि होती है। सम्यक्ज्ञान से कर्म विलय पुरस्सर आत्मोपलब्धि होती है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि **'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते'** अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य उसी प्रकार होता है जैसे स्वच्छ कांच में प्रतिबिम्बोपलब्धि होती है। पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुये यहां कहा गया है कि पुरुष नित्य, साक्षी, केवल, निस्त्रैगुण्य, माध्यस्थ उदासीन, द्रष्टा और अकर्त्ता है। पुरुष चेतन है। चेतन ही विषयों का ज्ञाता तथा द्रष्टा होता है। इसे अचेतन नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मा ही वह द्रव्य है जिसमें बुद्धि, सुख–दुःख, राग–द्वेष, इच्छा प्रयत्न आदि गुण रहते हैं। ये गुण शरीर के नहीं आत्मा के ही हो सकते हैं। आत्मा देह, इन्द्रिय आदि से भिन्न है, नित्य और व्यापक है। मन

से उसका प्रत्यक्ष होता है तथा मैं जानता हूं, मैं करता हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं इत्यादि से आत्मा का अस्तित्त्व प्रकट होता है।